आत्मोन्नति-दिग्दर्शन

लेखक—

स्वर्गस्थ शास्त्रविशारद—जैनाचार्य

श्रीविजयधर्मसूरि महाराज

अनुवादक—

श्रीयुत भंवरमलजी लोढ़ा, जैन

भोपाल

वीर सं. २४५६ धर्म सं. ८ वि. सं. १९८६

मूल्य चार आने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रकाशक —
फूलचंद्र वेद.
से० श्रीयशोविजय जैन ग्रंथमाला
हेरिसरोड़-भावनगर.

मुद्रक
अंबालाल विट्ठलभाई ठक्कुर
लुहाणामित्र स्टीम प्रेस
बड़ोदा
ता. १०-१२-१९

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

समर्पण.

प्रिय सरदार,

तुम्हारी ही सरदारी में खेले—कूदे, तुम्हारी ही गाडी में सैरें कीं, तुम्हारे ही साथ मिठाईयां उड़ाईं, और तुम्हारे ही साथ अध्ययन किया। इन स्मृतियों के उपलक्ष में, मेरा यह प्राथमिक प्रयास तुम्हीं को समर्पण करता हूं।

मैं हूं तुम्हारा—अभी
शिवपुरी में ऊड़ता
भंवर.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जगत्पूज्य श्रीविजयधर्मसूरिगुरुभ्यो नमः

दो शब्द।

एक प्राचीन ऋषि का कथन हैः

अस्मिन्नसारसंसारे निसर्गेणातिदारुणे।
अवधिर्नेहि दुःखानां यादसामिव वारिधौ॥

समुद्र में जिस प्रकार जलजंतुओं की कोई सीमा नहीं है, उसी प्रकार स्वभाव से ही अति भयङ्कर ऐसे इस संसार में दुःखों की सीमा नहीं है।

सूक्ष्म दृष्टि से संसार की भिन्न भिन्न अवस्थाओं को भोगनेवाले राजा–महाराजा, सेठ–साहूकार, गरीब–तवंगर, स्त्री–पुरुष, बालक–वृद्ध, यावत् सभी प्रकार के मनुष्यों की आंतर स्थिति देखी जाय तो उपर्युक्त बात की सत्यता ही नजर आवेगी। किसी को कुछ दुःख है, तो किसी को कुछ; कोई किस चिंता के मारे चूर हो रहा है, तो कोई कुछ। इस प्रकार सारा संसार दुःखसे व्याप्त है। और इसी लिये हरएक मुख से यही शब्द निकलते हैं– हरएक जगह यह चर्चा सुनाई देती है कि–हमारी मुक्ति कैसे हो। हम इस संसार से कैसे छूटें? यह भावना प्रायः

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सर्वत्र पायी जाती है। और इस भावना को सफल करने के लिये लोग यथाशक्य, यथारुचि, प्रयत्न भी करते हैं।

बेशक, संसार में एक 'साध्य' के पीछे साधन अनेक होते हैं। और भिन्न भिन्न साधनों द्वारा अपने अपने साध्य की सिद्धि के लिये लोग प्रयत्न करते हैं। इसके लिये भिन्न भिन्न साधनों–जैसे कि–भक्ति, तपस्या, ज्ञान, क्रिया, योग, दान, ब्रह्मचर्य, भावना, समाधि–इत्यादि द्वारा लोग प्रयत्न कर रहे हैं; परन्तु प्रायः देखा जाता है कि–एक साधन की साधना में दूसरे आवश्यकीय साधनों की तरफ सर्वथा उपेक्षा की जाती है। ऐसा होने से शास्त्रकारों की दृष्टि से अपने 'साध्य' तक पहुंचना अशक्य ही नहीं, असंभवसा होता है।

इस लिये स्वर्गीय जगत्पूज्य शास्त्रविशारद जैनाचार्य श्रीविजयधर्मसूरि महाराजने इस निबंध में यह दिखलाया है कि–मोक्ष प्राप्ति का राजमार्ग कौनसा है कि जो किसी के लिये भी असम्मत न हो, और जिसमें और सब साधनों का समावेश भी हो जाता हो। ऐसा मार्ग आपने दिखलाया है: दर्शन, ज्ञान और चारित्र। तत्त्वार्थसूत्र में उमास्वातिवाचक ने मोक्ष का मार्ग यही दिखलाया है: "सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्राणि मोक्षमार्गः।" हिंदुधर्मशास्त्रों के शब्दों में कहा जाय तो "सत्–चित् और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आनंद, यही आत्मोन्नति का मार्ग है।" जैनाचार्यों ने जिसको दर्शन–ज्ञान–चारित्र कहा है, उसी को हिंदुशास्त्रकार सत्–चित्–आनंद कहते हैं।

मोक्ष के लिये यह मार्ग एक अभेद्य मार्ग है। साध्यसिद्धि के लिये निःशंक मार्ग है। इसी मार्ग का विवेचन स्वर्गीय गुरुदेवने इस छोटेसे पुस्तक में किया है।

स्वर्गीय गुरुदेवने यह पुस्तिका मूल गुजराती भाषा में लिखी थी। आप के छोटे बडे करीब दो डझन ग्रंथ भिन्न भिन्न भाषाओं में अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। यह छोटी पुस्तिका होते हुए भी मोक्षाभिलाषियों–आत्मकल्याणाभिलाषियों के लिये अत्यन्त उपयोगी होनेसे और हिन्दी में इस का अनुवाद अबतक नही होनेसे, मैं मेरे हिंदी भाषाभाषी भाईयों के सम्मुख उपस्थित करता हूं।

मैं अभी विद्यार्थी अवस्था में हूं और यह मेरा प्रथम ही प्रयास है, इससे अनेक त्रुटियां दृष्टि गोचर होवेंगी। मेरी भाषा संस्कारी नहीं होने के कारण यदि इस में भाषा संबंधी कोई दोष आया होवे तो इस के लिये विद्वान् लोग क्षमा करेंगे, ऐसी आशा रखता हूं।

श्रीवीरतत्त्वप्रकाशक मंडल—शिवपुरी (ग्वालिअर)
धर्म सं. ८ ता. १–१०–२९

भंवरमल लोढ़ा जैन
भोपाल.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

॥ अर्हं ॥

आत्मोन्नति-दिग्दर्शन ।

संसार में समस्त प्राणी सुख के अभिलाषी हैं । कोई भी प्राणी दुःख की इच्छा नहीं करता है । तो भी मनुष्य दुःखसे नहीं बचता है, इस का कारण इतना ही है कि- सुख प्राप्ति के जो २ साधन हैं, उन साधनों को वह प्राप्त नहीं करता है । और दुःखदायक साधनोंसे दूर नहीं रहता है । इसी का परिणाम है कि मनुष्यों को यथार्थ-वास्तविक सुख नहीं प्राप्त होता है । इस सुख की पराकाष्टा तक पहुंचना, इसी का नाम है आत्मोन्नति । ' आत्मोन्नति ' अर्थात् आत्मा की उन्नति । दूसरे शब्दों में कहें तो आत्मा के मूल स्वरूप को जानना- अथवा आत्मा को स्वाधीन करना, इस का नाम ही आत्मोन्नति है ।

इस समय यह विचारना बहुत ही आवश्यक है कि- जिस ' आत्मा ' की उन्नति के लिये प्रयत्न करना है, वह ' आत्मा ' ऐसा कोई पदार्थ है या नहीं । क्यों कि

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस विषय में आस्तिकों और नास्तिकों के आपस में भारी मतभिन्नता है। याने समस्त आस्तिक दर्शनकार 'आत्मा' पदार्थ की सत्ता, अर्थात् 'अस्तित्व' का प्रतिपादन करते हैं। और नास्तिक मतवाले 'जड़वाद' को मान कर के 'आत्मवाद' का तिरस्कार करते हैं। जैसे कि—चार्वाक, सौत्रान्तिक, वैभाषिक इत्यादि पंच महाभूतसे तथा पंच स्कंध आदिसे अतिरिक्त 'आत्म' पदार्थ को बिलकूल नहीं मानते हैं। उन में से चार्वाकों का मन्तव्य सामान्य रीत्या इस प्रकार का है।

"पंचभूत में से एक नूतन शक्ति उत्पन्न होती है, जो चलनादि क्रिया करती है। जब इन पांच भूतोंमें से किसी एक भूत की शक्ति क्षीण होती है तब लोग 'मृत' अर्थात् 'मर गया' ऐसा व्यवहार करते हैं। जिस तरहसे गुड़, आटा, ताड़ी आदि पदार्थों के संयोग से मद्य शक्ति का प्रादुर्भाव होता है, और जिस प्रकार जळ में बुलबुले पैदा होते है, और उसी में नाश होते हैं, उसी प्रकार पंच महाभूत में से एक 'अमुक शक्ति' उत्पन्न होती है, और वह उसी में नष्ट हो जाती है। और उस ही शक्ति को धूर्त्त लोग 'आत्मा' मान कर लोगों को परलोक का भय उत्पन्न कराते हैं — नरक आदि का मिथ्या

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भय बता कर सांसारिक सुखों का त्याग कराते हैं। और लोग भी, शियाल की तरह उन धूर्त्तों के भ्रमजाल में फंसा कर दोनों से भ्रष्ट होते हैं।"

इत्यादि कथन नास्तिकों अथवा जड़वादियों का है।

यदि जड़वादियों के इस मन्तव्य पर आप सब शान्त रीतिसे विचार करेंगे तो आप को 'वदतो व्याघातः' का न्याय प्रतीत होगा। क्यों कि—'प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः' चार्वाक केवल एक 'प्रत्यक्ष प्रमाण' ही को मानते हैं। केवल 'प्रत्यक्ष प्रमाण' को मानने वाले चार्वाकोंसे यदि आप पूछें कि—'तुम्हारे मन्तव्यानुसार तो स्वर्ग, पुण्य, पाप, आदि, जो अनुमान प्रमाण से सिद्ध होते हैं, कोई भी पदार्थ हैं ही नहीं। तो उन 'पदार्थों का अभाव' जो तुम मानते हो, वह प्रामाणिक है या अप्रामाणिक? यदि उस 'अभाव' को 'अप्रामाणिक' माना जाय, तो फिर उन 'पदार्थों का अभाव' प्रामाणिक नहीं। अर्थात् तुम्हारा वह कथन अप्रामाणिक है। ऐसा सिद्ध होवेगा। अर्थात् स्वर्ग, पाप, पुण्यादि वस्तुओं का सद्भाव सिद्ध होगा। और अब उस 'अभाव' को प्रामाणिक मानोगे, तो भी दोषारोपण तो तुम्हारे पर ही लगा हुआ है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

क्योंकि–स्वर्ग, पाप, पुण्यादि परोक्षपदार्थों का जो अभाव तुम्हें सिद्ध करना है वह अनुमान करे बगर नहीं कहा जा सकता है, ऐसा न्याय है। दूसरी बात प्रत्यक्ष प्रमाण को भी प्रमाणभूत मानने में क्या प्रमाण है ? यदि कोई व्यक्ति ऐसा प्रश्न करे, तो आपको कुछ भी उत्तर देना ही होगा। और जो उत्तर आप देंगे, उसीका नाम 'अनुमान प्रमाण' है। जब तुम्हारे ही इस मन्तव्य से अनायास ही इस प्रकार 'अनुमान प्रमाण' सिद्ध होवेगा, उस समय आस्तिक लोगों के माने हुए 'आत्मा' के अस्तित्व का निषेध करने के लिए सचमुच ही कमनसीब ही बनोगे।

अब पंचभूत से आत्मा की उत्पत्ति माननेवालों से पूछेंगे कि "एक साथ पंचभूतों से आत्मा की उत्पत्ति मानते हो, या एक एक से पृथक् पृथक् ?" इसका यह उत्तर दें कि "पांचोंसे ही उत्पत्ति मानते हैं" तो, विलक्षण गुणों से युक्त और विलक्षण स्वभाववाले पांचभूतो (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) से 'आत्मा' की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होगी। क्योंकि कारण के अनुकूल ही कार्य होता है, ऐसा सामान्य नियम है। यदि साहसी बनकर ऐसा कहोगे कि–"पांचों के समुदाय से विलक्षण स्वभाव और विलक्षण गुणवाला 'आत्मा' पैदा होगा,"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तो हम पूछेंगे कि–पांच अथवा दश प्रकार की रेती (बालु) में से तेल की उत्पत्ति क्यों नहीं होती है । इसलिये मानना पड़ेगा की कारण से विलक्षण कार्य नहीं होता है । यदि ऐसा कहा जाय कि 'कारण से विलक्षण कार्य उत्पन्न होता है,' और उसके उदाहरण के वास्ते 'पानी से मोती की उत्पत्ति होती है' ऐसा बताया जाय, तो वह भी ठीक नहीं है। क्योंकि जौहरी की दुकान पर जाकर अनुभव करनेसे प्रतीत होगा कि–मोती का मूल्य उसके पानी पर ही निर्भर है । उससे भी, जैसा 'पानी' रूप कारण, वैसा ही कार्य सिद्ध हुआ । क्योंकि गुण कार्य में आते हैं, उससे ऐसा भी अनुमान हो सकता है कि–ज्ञान विज्ञानादि गुणोंवाला आत्मा कभी भी (किसी हालत में भी) पांच जड़भूतों से बनाहुआ नहीं है।

अब पांचभूतों में से एक एक के द्वारा आत्मा की उत्पत्ति माननेवाले का सिद्धान्त भी स्वयं ही खंडित होता है । क्योंकि-जब पंचभूतों के समुदाय से 'आत्मा की उत्पत्ति' सिद्ध नहीं हुई, तो फिर, अमुक एक एक महाभूत से किस प्रकार उत्पत्ति सिद्ध हो सकेगी ? । यदि आवेश में आकर कोई उसी प्रकार से सिद्ध करने का प्रयत्न करे, तो पांच आत्मा माने जायेंगे। और ऐसा हुआ तो फिर किससे कार्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लेना, यह एक विचारणीय प्रश्न होजायगा। इन सब बातों पर विवेकदृष्टि से विचार किया जाय तो सुख दुःख का जाननेवाला, स्मृति आदि गुणों से विभूषित आत्मा पदार्थ अनुभव सिद्ध है। तथा कुशाग्रबुद्धि तत्त्ववेत्ताओंने अनुमान प्रमाण से भी सिद्ध किया है। जब 'आत्मा' पदार्थ सिद्ध होता है, तब पुण्य–पाप का भी संबंध स्वतःसिद्ध है। जब पुण्य–पाप का अस्तित्व है, तो फिर परलोक के वास्ते कहना ही क्या? और जब परलोक साबित है, तो फिर आत्मा की उन्नति चाहनेवाले नरवीरों को आत्मा की पहचान अवश्य करनी चाहिए।

प्रत्येक दर्शनकारने आत्मसिद्धि के वास्ते अत्यन्त प्रयत्न किया है। वैसा करके अपने क्षयोपशमानुसार आत्मा का स्वरूप प्रतिपादन किया है। तब जैनशास्त्रकारोंने अतीन्द्रिय ज्ञानद्वारा बराबर मनन करके लोकोपकार के लिये आत्मा के स्वरूप का यथार्थ दर्शन कराया है, उसमें से यत्किञ्चित् यहाँ पर प्रकट किया जाता है।

द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से अज, अविनाशी, अचल, अकल, अमल, अगम्य, अनामी, अरूपी, अकर्मा, अबन्धक, अयोगी, अभोगी, अरोगी, अभेदी, अच्छेदी, अवेदी, अखेदी, अकषायी, असखायी, अलेशी,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अशरीरी, अनाहारी और अव्याबाध इत्यादि अनेक विशेषणयुक्त सच्चिदानन्दमय आत्मा है। परन्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा से जन्म-जरा-मरणादि व्यपदेश का सेवन करता हुआ ऊपर बताये हुवे विशेषणो से विपरीत लक्षणवाला आत्मा माना जाता है। यह विपरीतता उसको अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के कारण से हुई है। अर्थात् कर्मोंने आत्मा को, उसके (आत्मा के) मूलस्वरूप से भ्रष्ट किया है। उन कर्मों के मुख्य आठ भेद हैं। और सामान्य रीति से उत्तरभेद १५८ हैं। यदि उन कर्मों की वर्गणा आदि पर ध्यान देवेंगे, तो आत्मा के एक एक प्रदेश पर अनंत कर्मदल लगे हुए हैं, ऐसा प्रतीत होगा। उन कर्म वर्गणाओं में निरंतर-प्रति समय राग-द्वेषादि की न्यूनाधिकता के प्रमाण में फेरफार होता ही रहता है। राग-द्वेष कर्म बन्धन का सबल कारण है। और उनसे छुटकारा पाना उसका नाम ही मुक्ति है। यह बात आगे कही जायगी। प्रस्तुत में तो उन कर्मों के नाम, उनका स्वभाव, और किस कारण से कौन से कर्म का संबंध आत्मा के साथ होता है, यही बात बताई जाती है।

(१) ज्ञानावरणीय, (२) दर्शनावरणीय, (३) वेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयुष्क (६) नाम, (७) गोत्र और (८) अंतराय ये मुख्य आठ कर्म हैं।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रथम **ज्ञानावरणीय कर्म**, अर्थात् ज्ञान को आच्छादित करनेवाला कर्म। इस कर्म का स्वभाव पट्टी के जैसा है। अर्थात् जैसे नेत्रों पर पट्टी बंधी होती है, तब प्राणी कोई भी वस्तु नहीं देख सकता है, उसी तरह ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से जीव ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। हम सब प्रत्यक्ष रीति से अनुभव करते हैं कि–कितनेक प्राणी परिश्रम कर के ज्ञान संपादन करते हैं। जब कि कई एक मनुष्य विना उद्योग के– खेल–कूदपूर्वक ज्ञान प्राप्त करते हैं। और बहुत से अधिक श्रम करने पर भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उन सब का मूल कारण ज्ञानावरणीय कर्म ही है। इस कर्म का जैसा क्षयोपशम होता जाता है, उसी प्रमाण में ज्ञान भी प्राप्त होता जाता है। और इसी कारण से ज्ञानावरणीय कर्म के पांच भेद किये गये हैं। वे ये हैं:

(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय (४) मनःपर्यवज्ञानावरणीय और (५) केवलज्ञानावरणीय। जैसे जैसे आवरण दूर होते जाते हैं, वैसे वैसे मतिज्ञानादि निर्मल होते हैं। मतिज्ञान के अवान्तर भेद २८ हैं, श्रुतज्ञान के १४, अवधिज्ञान के ६, मनःपर्यवज्ञान के २, और केवलज्ञान का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१ है, इस प्रकार कुल ५१ भेद हैं। उन भेदों का वर्णन नन्दीसूत्र, कर्मप्रकृति तथा कर्मग्रंथादि शास्त्रों में विवरण सहित किया गया है। जिज्ञासु मनुष्यों को चाहिए कि उन शास्त्रों का अवलोकन करें।

दर्शनावरणीय कर्म—द्वारपाल के सदृश है। अर्थात् राजा के पास जाने में अटकानेवाला प्रतिहार राजा के दर्शन नहीं करने देता है, वैसे ही यह कर्म आत्मा और समस्त वस्तु तत्त्व का दर्शन (सामान्याकार अवबोध) होनेसे अटकाता है। परन्तु जैसे जैसे इस कर्म की गति मंद होती जाती है, वैसे वैसे उस के प्रमाण में पदार्थ दर्शन स्फुरित होता है, और जिस समय इस कर्म का सर्वथा क्षय हो जाता है, तबही केवल दर्शन प्रकाशित होता है। इस दर्शनावरणीय कर्म के चक्षुदर्शनावरणीय, अचक्षुदर्शनावरणीय, अवधि दर्शनावरणीय, और केवल दर्शनावरणीय—एवं निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि ये नव भेद हैं।

देवदनीय कर्म—तलवार की धार पर लगे हुए मधु (शहत) के सदृश है। अर्थात् शहत को चाटते हैं तो स्वाद मालूम होता है, परन्तु जिह्वा कटती है,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तब वेदना उत्पन्न होती है । इस के दो भेद हैं: १ साता वदेनीय और २ असाता वदेनीय ।

मोहनीय कर्म—मदिरापान के सदृश है। जिस प्रकार मदिरापान करनेवाले को कृत्याकृत्यका विवेक नहीं रहता है, उसी प्रकार से मोहनीय कर्म के जोर से जीव स्वसत्ता को भूलकर परपरिणति में पड़कर शुभाशुभ कार्य करता है। इस कर्म के मुख्य दो भेद हैं—१ **दर्शनमोहनीय**, २ **चारित्रमोहनीय** । दर्शनमोहनीय के ३ भेद हैं: १ मिथ्यात्वमोहनीय, २ मिश्रमोहनीय, ३ सम्यक्त्वमोहनीय। चारित्रमोहनीय के, सोलह कषाय और नव नोकषाय मिलकर, २५ भेद हैं। क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषायों के अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यानी, अप्रत्याख्यानी और संज्वलन इस प्रकार प्रत्येक के चार चार भेद होनेसे १६ भेद हुए । नव नोकषायों के नाम ये हैं: हास्य, रति, अरति, शोक, भय, दुगंछा, पुंवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद । इस प्रकार चारित्रमोहनीय के २५ भेद और दर्शनमोहनीय के ३ मिलाकर मोहनीय कर्म के २८ भेद हैं ।

आठ कर्मों में यह कर्म प्रबल शक्तिशाली है । ग्यारवें **उपशांतमोह** नामक गुणस्थान में गये हुवे जीव को भी नीचे उतारने में यह मोहनीय कर्म कारणभूत है ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शास्त्रकारोंने मोहनीयकर्म के नाश से समस्त कर्मों का नाश माना है। उसके वास्ते दृष्टान्त दिया जाता है कि– तालवृक्ष के शिर पर सुई लगाने से तालवृक्ष स्वयं सूख जाता है। उसी प्रकार मोहनीय कर्म के नाश से समस्त कर्मों का नाश हो जाता है।

पांचवा **आयुष्य कर्म** निगड़ ('बेड़ी') के समान है। जिस प्रकार बेड़ी में फंसा हुआ प्राणी भागने के लिये असमर्थ होता है, उस प्रकार आयुष्य कर्म के जोरसे जीव नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देवगति में जा कर स्वस्थिति अनुसार निवास करके भवान्तर में उपार्जन किये हुए पुण्य–पापानुसार सुख अथवा दुःख सहन करता है। आयुष्य कर्म के दो भेद हैं **सोपक्रम आयुष्य कर्म** और **निरुपक्रम आयुष्य कर्म**। **सोपक्रम**, अर्थात् किसी भी कारण से आयुष्य की मूल स्थिति में न्यूनता होना। **निरुपक्रम**, अर्थात् जितना आयुष्य बांधा हो, उतना ही भोगना पड़े। निरुपक्रम आयुष्य देव और नारकी के जीवों को, तथा मनुष्य गति में चरमशरीरी को तथा युगलियों को होता है।

नामकर्म चित्रकार के सदृश है। चित्रकार में जैसी कला होती है, वैसा ही रूप चित्रित किया जाता है। उसी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तरह नामकर्म जिस प्रकार का होता है वैसा शरीर बनता है। नामकर्म के ४२, ९३, अथवा १०३ भेद हैं। इसका विस्तार यहाँ नहीं करते हुए कर्मग्रंथ तथा लोकप्रकाश पृ. ५८८ से ६०० पर्यन्त नामकर्म का अधिकार देखने का अनुरोध किया जाता है।

गोत्रकर्म कुंभकार (कुंभार) तुल्य है। जैसे कुंभार छोटे बड़े कुंभादि बनाता है। उन घडो में से कुछ प्रशंसित होते हैं, और कितनेक की निंदा भी होती है। वैसे ही जीव **उच्चगोत्रकर्म** के जोर से प्रशंसापात्र होता है, और **नीचगोत्रकर्म** के जोर से निंदापात्र भी होता है। ऊंच-नीच गोत्र की मर्यादा का आधार इसी कर्म पर रहा हुआ है। जिन देशों में जाति बंधन नहीं है। उन देशों में भी ऊंच-नीच गोत्र का व्यवहार होता है। तात्पर्य इतना ही है कि कर्मकृत भेद किसी भी स्थान पर गुप्त नहीं रह सकता है।

अन्तरायकर्म कोषाध्यक्ष अर्थात् खजानची के तुल्य है। अर्थात् राजा संतुष्ट होवे, परन्तु कोषाध्यक्ष यदि प्रतिकूल होगा, तो दमड़ी भी नहीं मिलती है। वैसे ही यदि अन्तराय कर्म का उदय होता है तो दान, लाभ, भोग, उपभोग, और वीर्य-इन पांच वास्तविक गुणों से जीव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वंचित रहता है। जीव जानता है कि दान देने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है। वित्त (द्रव्य) और सत्पात्र दोनों का योग भी मिलता है, तथापि **दानान्तराय कर्म** के उदय से दान नहीं दे सकता है। वैसे ही द्रव्यादि उपार्जन करने के अनेक उपाय जानता है, बुद्धिमान भी है और प्रयत्न भी करता है, तथापि उसका परिश्रम निष्फल होता है और **लाभान्तराय कर्म** के उदय से लाभ प्राप्त नहीं कर सकता है। भोग और उपभोग की भी संपूर्ण सामग्री होते हुए भी मम्मण सेठ की तरह **भोगान्तराय** और **उपभोगान्तराय कर्म** के उदय से वह भोग नहीं सकता। इसी प्रकार इष्ट वस्तु की प्राप्ति और अनिष्ट वस्तु के परिहार करने को समर्थ है तो भी **वीर्यान्तराय** कर्म के उदय से साहसी नहीं होता है।

इस अन्तराय कर्म के पांच भेदों की पूर्णाहुति करने के साथ आठों कर्म के स्वभाव भी संक्षिप्त में बताये गये हैं। अब, किस कारण से कैसा कर्म बांधा जाता है, तत्संबंधी कुछ विचार करें।

ज्ञान, ज्ञानी, ज्ञानोपकरण (पाटी-पुस्तक-कवली-आदि) की तथा गुरु आदि की आशातना अवज्ञा-द्वेष-मत्सर-निंदा-उपघात-अन्तराय-प्रत्यनीकता और निह्नवता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आदि करने से जीव **ज्ञानावरणीय** तथा दर्शनावरणीय कर्म बांधता है ।

देव–गुरु आदि की प्रेमपूर्वक भक्ति, जीवदया तथा क्रोध, मान, माया, लोभादि आन्तरिक शत्रुओं के विजय द्वारा, दातृत्व और सद्धर्मयुक्त ऐसा जीव **शातावेदनीय** कर्म बांधता है । और उस से विपरीत आचरणवाला प्राणी **अशातावेदनीय कर्म** बांधता है ।

उन्मार्ग का पोषण करनेवाला, धर्ममार्ग का लोप करनेवाला, धर्मिष्ठ वर्ग की निंदा करनेवाला तथा देव-द्रव्यादि का भक्षण करनेवाला जीव **दर्शनमोहनीय कर्म** उपार्जन करता है । और कषाय, हास्य एवं विषयादि द्वारा प्राणी **चारित्रमोहनीय कर्म** बांधता है ।

महारंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय का वध और मांसा-हार करनेवाला तथा मृषावादी जीव **नरक का आयुष्य** बांधता है । मनुष्यों को ठगनेवाला, और शल्य (माया शल्य–निदान शल्य–मिथ्यात्व शल्य) युक्त जीव **तिर्यंग् आयु** बांधता है । मध्यम गुणवान् स्वभाव से अल्पकषाय-वाला, दान–शील–तप और भावादि में रुचिवाला, तथा सरलाशय जीव **मनुष्य आयुष्य** बांधता है । तथा चतु-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

र्थादि गुणस्थानवर्ती, अकामनिर्जरावान् एवं बालतपस्वी आदि **देवायुष्य** का भागी होता है।

ऋद्धिगौरव, रसगौरव एवं सातागौरवरहित सरल-परिणामी जीव **शुभनाम कर्म** बांधता है और इस से विपरीत लक्षणवाला जीव **अशुभनाम कर्म** उपार्जन करता है।

गुणों को देखनेवाला, मदरहित, पठन-पाठन में उद्यमी, अर्हदादि की भक्ति करनेवाला प्राणि **ऊंच गोत्रकर्म** बांधता है और इससे विपरीत लक्षणवाला जीव **नीचगोत्र कर्म** उपार्जन करता है।

हिंसक तथा देवाधि देव की पूजा में विघ्न करनेवाला **अन्तरायकर्म** बांधता है।

पूर्वोक्त अष्टकर्मरूपी महामलीन मल आत्मा पर लगने से प्राणी संसारचक्र में जन्म, जरा, मृत्यु आदि करता है। अनेक दुःखों की परंपरा को भोगता है। दुःख को सुख रूप मान कर मिथ्याभिमानी बनता है। किसी समय थक कर धर्म की इच्छा करता है, परन्तु किसी समय धर्म को भी अधर्म समझता है। कभी २ मोक्षाभिलाषी बनता है, तो कभी मोक्ष को एक कल्पित चीज

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मान कर संसार सागर में भ्रमण करने के वास्ते भव बढ़ाता रहता है। संक्षिप्त में कहें तो—जीव, इस संसार में नट की तरह नये २ वेषों को धारण करता है। इस स्थिति का अनुभव समग्र प्राणी करते हैं। इस लिये इस विषय में अधिक न कहते हुए आठों कर्मों के नाश के वास्ते आत्मार्थी जीवों को कौन से मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, इस पर अवलोकन—विचार करें।

इस विषय में संक्षेप में कहा जाय तो **सदाचार** और **सद्विचार** ये दो कर्मनाश के उत्तम साधन हैं। सदाचार का पालन करने के वास्ते ही समस्त शास्त्रों की रचना हुई है, यदि ऐसा कहा जाय तो किसी प्रकार की अतिशयोक्ति नहीं है। सामान्य रीत्या सदाचार का स्वरूप इस प्रकार है:

लोकापवादभीरुत्वं दीनाभ्युद्धरणादरः।
कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं सदाचारः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थात्—लोक (प्रामाणिक लोक) के अपवाद से डरते रहना—लोक विरुद्ध कार्य का त्याग करना। अन्तः-करण शुद्ध हो, और कार्य भी उत्तम हो, परन्तु लोकदृष्टि से यदि वह अनुचित—अयोग्य होवे, तो उस कार्य से दूर रहना चाहिए। दीन अर्थात् धर्म-अर्थ-काम—मोक्ष—इन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चार वर्गों में से एक भी वर्ग की आराधना करने के लिये असमर्थ ऐसे प्राणियों का उद्धार करना। कृतज्ञता अर्थात् किये हुए गुणों को समझना—उसका बदला देना, किन्तु गुण चोर नहीं होना। तथा दाक्षिण्य (मिलनसारपना) रखना। यही सदाचार कहलाता है। संक्षेप में सदाचार का अर्थ इतना ही है कि—सज्जन पुरुषों का आचार। सामान्य पुरुषों की अपेक्षा से विलक्षण प्रकार के स्वभाववाले मनुष्य सत्पुरुष कहे जाते हैं। वृक्ष शीतलता के साथ ही साथ पत्थर मारनेवाले को फल भी देता है। वैसे ही सत्पुरुष होते हैं। जो लोग चंदन की तरह घिसने पर भी शीतलता को नहीं छोड़ते; छेदन—भेदन दशा में भी गन्ने (शेलड़ी) की तरह मिष्टता का त्याग नहीं करते हैं; सुवर्ण के समान, कठिन ताप में भी अपने उच्च स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं; उपसर्ग अवस्था में मेरु के समान धैर्य रख कर निष्प्रकंप रहते हैं; राग का प्रसंग होते हुए भी शंख के समान निरागी रहते हैं; और दुःखित अवस्था में सिंह की तरह घबराते नहीं हैं; जो कलिकाल में भी जैनमुनियों के समान सत्य को नहीं छोड़ते हैं। सुभटों की तरह कर्म रूपी महाशत्रुओं पर विजय प्राप्त करते हैं; तपस्वियों की तरह परोपकार में शरीर की दरकार नहीं करते हैं और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

योगियों के समान धर्मध्यान में निरन्तर लीन रहते हैं, उन्हीं को सत्पुरुष समझना चाहिये। ऐसे सत्पुरुषों के आचार सदाचार कहलाते हैं। और यही सदाचार परंपरा से मोक्ष का हेतु होता है। सदाचार से गृहस्थ धर्म की प्राप्ति होती है। यह गृहस्थ धर्म द्वादशव्रत रूप समझना चाहिये। इस धर्म को पालनेवाले 'मुनिधर्म' के इच्छुक होते हैं। इस प्रकार शास्त्र में प्रतिपादन किया गया है। अर्थात् अनुक्रम से मुनिधर्म की प्राप्ति होती है।

यह मुनिधर्म रत्नत्रय स्वरूप है। उसको योगी योग रूप बताते हैं। यह योग मोक्ष का साक्षात् कारण है। अब रत्नत्रय क्या वस्तु है, इस पर विचार करें।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र, इन वस्तुओं की शास्त्रकारोंने रत्नत्रयी संज्ञा रक्खी है। जिस प्रकार द्रव्य रत्नसे दरिद्रता दूर होती है, उसी प्रकार इन भाव रत्नों से जीव अनादिकाल की दरिद्रता से मुक्त होता है। वह इस प्रकार मुक्त होता है, कि पुनः दरिद्रता उस के पास आने ही नहीं पाती। इन तीन भाव रत्नों में से प्रथम ज्ञान नामक रत्न के स्वरूप पर दृष्टिपात करें।

नय, प्रमाण, निक्षेप और स्याद्वादद्वारा यथावस्थित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वस्तु तत्त्व अर्थात् जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष–आदि पदार्थों का संक्षेप से अथवा विस्तार पूर्वक जानना, उस को विद्वान् लोग सम्यग् ज्ञान कहते हैं।

कतिपय प्राणियों को क्षयोपशम भाव से संक्षेप ज्ञान होता है। और कितनेक को कर्मक्षय होने से विस्तार पूर्वक ज्ञान होता है। विस्तार ज्ञान से युक्त मात्र केवली भगवान् ही हो सकते हैं। संक्षेप ज्ञानवाले–अपन सब छद्मस्थ हैं। इस लिये केवली के बचन पर विश्वास रख कर जीवादि पदार्थों पर रुचिमान् होना यह सम्यक् दर्शन नामक दूसरा रत्न है।

भोजनादि चाहे कितने ही सुन्दर होवे, परन्तु रुचि न होने के कारण से स्वादिष्ट (ज़ायकेदार) नहीं लगते हैं। वैसे ही पदार्थ (तत्त्व) इतर मत की अपेक्षा से सुव्यवस्थित और परस्पर बाधारहित होवे, परन्तु रुचि के अभाव में वे ठीक नहीं लगते हैं। इस कारण से श्रद्धायुक्त ज्ञान को सम्यक् ज्ञान कहा है। इस सम्यक् ज्ञान की महिमा का वर्णन शास्त्रों में अनेक स्थलों पर किया है। उस में से नमूने के तरीके पर एक श्लोक यहां पर प्रदर्शित किया जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भवविटपिसमूलोन्मूलने मत्तदन्ती
जडिमतिमिरनाशे पद्मिनी प्राणनाथः ।
नयनमपरमेतद् विश्व तत्त्व प्रकाशे
करणहरिणबन्धे वागुरा ज्ञानमेव ॥ १ ॥

अर्थात्—संसार रूपी वृक्ष को समूल उखाडने में मदोन्मत्त हाथी के समान, मूर्खता रूपी अन्धकार के नाश करने में सूर्य तुल्य, समस्त जगत् के तत्त्वों के प्रकाशित करने में तीसरे नेत्र के समान और इन्द्रिय रूपी हरिणों के वश करने में जाल (पाश) के समान ज्ञान है ।

सम्यक् ज्ञान रूप प्रथम रत्न के विवेचन करने के बाद अब दूसरा **सम्यक् दर्शन** आता है । इस रत्न के विना किसी भी प्राणी का कल्याण नहीं हो सकता । इसी के बल से और इसी के प्रसाद से अनन्त प्राणी शिवमंदिर (मोक्ष) में विराजमान हुए हैं, विराजमान होते हैं, और विराजमान होंगे । अङ्करहित शून्य जिस प्रकार व्यर्थ माना जाता है अर्थात् वह संख्या नहीं बता सकता, वैसे ही तत्त्वश्रद्धान रूप **सम्यक् दर्शन** विना धर्मध्यान—दान, शील, तप और भावादि व्यर्थ हैं । अर्थात् ये सब मोक्ष के हेतुभूत नहीं होते । श्रद्धा के विना कोई भी कार्य ठीक नहीं हो सकता है, तो फिर मोक्ष प्राप्ति

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैसे महान् कार्य की तो बात ही क्या है ? जिनोक्त तत्त्व में रुचि रखना, उस का नाम ही श्रद्धा है । और वही सम्यक् दर्शन अथवा सम्यक्त्व कहलाता है । जैसे रत्नों का आधार समुद्र है, और प्राणी मात्र का आधार भूमि है, वैसे ही समस्त गुणों का आधार सम्यक् दर्शन है । जीस जीव के हृदय मंदिर में श्रद्धान रूप दीपक प्रकट हुवा है, उस के हृदय में मिथ्यात्व रूपी अन्धकार कदापि नहीं रह सकता है ।

सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति किसी को गुरु के उपदेश से होती है, और किसी को स्वाभाविक ही होती है । अनादि संसार चक्र में भ्रमण करता हुआ जीव अकाम निर्जरा के योग से 'नदी-पाषाण' न्यायानुसार (नदी में रहे हुए पाषाण को कोई घड़ता नहीं है, परन्तु वह स्वयं गोलाकार बनता है, वैसे) अनुपयोग भाव से अशुभ कर्म का भार घटाकर शुभ कर्म की वृद्धि करता हुआ आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, पंचेन्द्रियपटुता, सद्बुद्धि, शास्त्रश्रवण, और तत्त्व का अन्वेषण (शोध) आदि गुणों को प्राप्त करता है । कतिपय प्राणियों को गुरु का योग भी मिलता है, उस गुरुमहाराज के उपदेश से जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष रूप तत्त्वों का

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ज्ञान भी होता है। तत्त्वों का ज्ञान होने से स्व-पर का विवेक होता है, अर्थात् वह समझता है कि– मेरा आत्मा ज्ञान–दर्शन–चारित्र–वीर्यादि गुणों से युक्त है। और अन्य पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं, जिन का व्यवहार जड–पुद्गलादि शब्दों में किया जाता है। संसार में जीतने दृश्य पदार्थ हैं, वे सब पौद्गलिक हैं। उस में कितनेक दृश्यगुण वाले होते हुए भी उनको चर्मचक्षुवाले जीव नहीं देख सकते हैं। दृष्टान्त के तौर पर–परमाणु आदि असल में दृश्य स्वभावी हैं, परन्तु दिखाई नहीं देते हैं। यदि ऐसा न होवे तो परमाणु के समूह से बने हुवे अवयव भी प्रत्यक्ष नहीं हो। जड़ के संबंध से आत्माने तद्रूपता को किसी अंश में प्राप्त किया है। उदाहरण के तौर पर–सुवर्ण द्रव्य स्वच्छ होते हुवे भी मृत्ति का (मिट्टी) के संयोग से तद्रूप प्रतीत होता है। परन्तु सोने पर रही हुई मिट्टी रूपी मेल दूर होने पर अपने स्वरूप का भान आबाल वृद्ध पर्य्यन्त–सभी को कराता है। उसी तरह आत्मा पर रहे हुए कर्म रूपी महामलीन मेल दूर होने से आत्मा परमात्मा की दशा का भोग करता है। वर्त्तमान समय में आत्मा स्फटिक रत्न की उपमा के योग्य है। अर्थात् स्फटिक रत्न के सम्मुख जिस रंग का फूल रक्खा जाता है। वैसा ही रंग स्फटिक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में प्रतीत होता है। उसी प्रकार अपना-छद्मस्थों का आत्मा जिस संगति में पड़ता है, वैसे ही रंग-ढंगवाला मालूम होता है। निदान, आस्तिकों की संगति से आस्तिक गुणवाला प्रतीत होता है, और नास्तिक की सोहबत से नास्तिक बनता है। जड़वादी पुरुषों के सहवास से जड़वाद स्वीकारता है, और स्त्री-धन-पुत्रादि के संसर्ग में आत्मा उसके आधीन हुआ मालूम होता है। जब कि-गुरु वगैरह के परिचय में आने से वैसी ही बुद्धिवाला दृष्टिगोचर होता है। यह बात अनुभव सिद्ध है। इस का यथास्थिति विचार करना, उस का ही नाम स्व-पर का विवेक है। और उस प्रकार के विवेक को श्रद्धा, तत्त्वरुचि अथवा सम्यक्त्व आदि नामों से शास्त्रकार पहचान कराते हैं। ऐसे उपदेश से होनेवाले सम्यक्त्व को 'अधिगमसम्यक्त' जानना चाहिए। अब जीव को स्वाभाविक सम्यक्त्व किस प्रकार प्राप्त होता है, उस का संक्षिप्त विवेचन यहां किया जावे तो अयोग्य नहीं होगा।

समस्त जीव यथाप्रवृत्तिकरण रूप परिणाम विशेष के अधिकारी हैं। इस यथाप्रवृत्तिकरण समय में जीव आयुष्य कर्म के अतिरिक्त शेष सात कर्मों की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दीर्घ स्थिति का क्षय कर के लघु स्थिति करता है। जैसे एक प्राणी के आश्रय से मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर (७०) कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट ३० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की स्थिति है। नामकर्म और गोत्रकर्म की २० कोड़ा-कोड़ी सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति है। अर्थात् उन सात कर्मों की स्थिति उस समय एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम से कुछ न्यून रहती है। इस यथाप्रवृत्तिकरण रूप परिणाम-वाला जीव संख्याता अथवा असंख्याता काल पर्य्यन्त रहता है। ऐसे परिणामवाले जीव राग–द्वेष रूप निबिड़ गांठ के पास आये हुवे हैं। इस प्रकार तत्त्वदर्शी पुरुष निरुपण करते हैं।

अब इस स्थान से कतिपय भव्यप्राणी आत्मोन्नति के मार्ग में आगे बढ़ते हैं। जबकि अभव्य पीछे हटते जाते हैं। उदाहरणार्थ—कई आदमी ग्रामान्तर (दूसरे गांव) को जा रहे थे। उनमें एक कायर–भीरू-था वह दो चोरों को देखकर तुरत ही पीछे हटा। दूसरा आदमी उसी स्थान पर खड़ा रहा। और तीसरा पुरुष आत्मशक्ति से चोर पर विजय प्राप्त करके इच्छित नगर में पहुंचा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उसी प्रकार से इस राग-द्वेष की गांठ के समीप आये हुवे जीवों में से कइएक प्राणी राग-द्वेष रूपी महाचोर के भय से पीछे हठते हैं। कतिपय प्राणी अमुक काल पर्यन्त वहीं निवास करते हैं। अर्थात् यथाप्रवृत्ति परिणाम में ही निवास करते हैं। जब कि-कइ एक राग-द्वेष को परास्त कर के अपूर्वकरण परिणाम, जो परिणाम कभी प्राप्त नहीं हुआ है, कर के आगे बढ़ कर जहाँ पर शुद्ध परिणाम रूप मंदिरों की श्रेणी रही हुई है, वैसे सम्यक्त्व शहर में पहुँच कर अमूल्य चारित्ररत्न का संग्रह करते हैं।

यहाँ कोई शंका करे कि-अभव्य यथाप्रवृत्तिकरण रूप परिणाम में कौन से हेतु से आते हैं? इसके उत्तर में समझना चाहिये कि-लोकऋद्धि को देख कर देवत्वादिक सुख की अभिलाषा से वे द्रव्यचारित्र का अङ्गीकार करते हैं। इतना ही नहीं परन्तु उसका (द्रव्यचारित्र का) पौद्गलिक सुख के वास्ते पालन भी करते हैं। और पालन कर के देवलोक में नववें ग्रैवेयक तक जाते हैं। परन्तु आत्मीय कल्याण के अभिलाषी नहीं होने के कारण से अभव्य जीव अपूर्वकरण रूप विशुद्ध अध्यवसाय का भागी नहीं होता है। जब कि भव्य जीव आगे बढ़ कर अपूर्वकरणरूप शुद्ध परि-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

णाम का स्वामी होता है, और जब जीव, अपूर्व करणरूप परशु द्वारा रागद्वेष की मजबूत गांठ को छिन्नभिन्न कर अनिवृत्तिकरणरूप विशुद्धतर अध्यवसाय को प्राप्त करता है, तब, कई एक आचार्यों के मतानुसार औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। अन्य कइ एक पूज्यवरों के आशयानुसार क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय में जीव अवर्णनीय आनंद पाता है। जिस प्रकार कि-सुभट दुर्जय शत्रु पर विजय प्राप्त करके आनंदित होता है, और जैसे किसी भयंकर अटवी में तृषा से पीड़ित मनुष्य को, शीतल-चंदन वृक्ष की स्निग्ध छाया के नीचे बैठ कर अमृत का पान कराया जाय, उस समय उस को जो आनंद होता है, उस से भी विशेष आनंद सम्यक्त्ववाले जीव को प्राप्त होता है। इस प्रकार जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है, और वही निसर्गसमकित कहा जाता है।

उपर्युक्त कथनानुसार सम्यक्त्व दो प्रकार का है। १ अधिगमसमकित, २ निसर्गसमकित। दोनों प्रकार के सम्यक्त्व की प्राप्ति मिथ्यात्वभाव दूर होने से होती है। जैसे कोई पुरुष सन्मार्ग का त्याग कर उन्मार्ग पर गया होवे, वह कभी भ्रमण करता हुआ स्वयं सन्मार्ग पर आ जाता है। अथवा दूसरा कोई मनुष्य उसको मार्ग पर

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लाता है। एवं जिस प्रकार कोद्रव नामक धान्य, दीर्घ-काल में स्वयमेव छिलके रहित होजाता है, और कईएक धान्य चलनी आदि के प्रयोग से छिलके रहित किये जाते हैं, कई मनुष्यों का बुखार औषधि वगैर शान्त होता है और कइएक का बुखार औषधि आदि से शान्त करना पड़ता है, उसी प्रकार कितने ही को स्वभावसे ही समकित होता है, वह **निसर्ग समकित** कहा जाता है, और जो दूसरों के उपदेशादि से होता है, वह अधिगम सम्यक्त्व कहलाता है।

यहाँ तक ज्ञान और दर्शन की व्याख्या की। अब तीसरे **चारित्र** नामक रत्न के स्वरूप पर दृष्टिपात करें।

सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय कितने ही निकटभवी जीव, देशविरति और सर्वविरति रूप चारित्र को ग्रहण करते हैं। इन चारित्रों में देशविरति रूप चारित्र द्वादश-व्रत रूप है। इसका वर्णन यहाँ पर नहीं करते हुए, 'जैन-तत्त्वदिग्दर्शन'* नामक पुस्तक देखने का अनुरोध करता हूं। सर्वविरति रूप चारित्र पांच महाव्रत रूप है

---

* यह पुस्तक इसी पुस्तक के मूल लेखक स्वर्गस्थ आचार्य महाराज की बनाई हुई है। और वह भावनगर की यशोविजय जैन ग्रंथमालाने प्रकाशित किया है। —अनुवादक।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

१ प्राणातिपातविरमण व्रत, २ मृषावादविरमण व्रत, ३ अदत्तादानविरमण व्रत, ४ मैथुनविरमण व्रत, और ५ परिग्रहविरमण व्रत। इन पांचों नियमों में ही समस्त नियमों का समावेश होजाता है। ये नियम समस्त आस्तिक मात्रको अनुकूल हैं। अर्थात् इन नियमों में सभी आस्तिक सहमत हैं। क्योंकि श्रीहरिभद्रसूरि का वचन हैः

पञ्चैतानि पवित्राणि सर्वेषां धमचारिणाम्।
अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागो मैथुनवर्जनम्॥

ये पांच वस्तुएं सब धर्मवालोंने पवित्र मानी हैं। १ अहिंसा, २ सत्य, ३ अदत्त वस्तु का त्याग, ४ त्याग (मूर्च्छारहितपना) और ५ ब्रह्मचर्य का पालन।

इन पांचों नियमों को प्रत्येक मतानुयायी किस प्रकार मान्य रखता है, इस विषय में यत्किंचित् स्पष्टतया विचारें।

प्राहुर्भागवतास्तत्र व्रतोपव्रतपञ्चकम्।
यमांश्च नियमान् पाशुपता धर्मान् दशाभ्युधुः॥१॥
अहिंसा सत्यवचनमस्तैन्यं चाप्यकल्पना।
ब्रह्मचर्यं तथाऽक्रोधो ह्यार्जवं शौचमेव च॥ २॥
संतोषो गुरुशुश्रुषा इत्येते दश कीर्त्तिताः।
निगद्यन्ते यमाः सांख्यैरपि व्यासानुसारिभिः॥३॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अहिंसा सत्यमस्तैन्यं ब्रह्मचर्यं तुरीयकम् ।
पञ्चमो व्यवहारश्चेत्येते पञ्च यमा स्मृताः ॥ ४ ॥
अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचमाहारलाघवम् ।
अप्रमादश्च पञ्चैते नियमाः परिकीर्त्तिताः ॥ ५ ॥
बौद्धैः कुशलधर्माश्च दशेष्यन्ते यदुच्यते ।
हिंसास्तेयान्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृतम् ॥ ६ ॥
संभिन्नालापव्यापादमभिध्या दृग्विपर्ययम् ।
पापकर्मेति दशधा कायवाङ्मानसैस्त्यजेत् ॥ ७ ॥
ब्रह्मादिपदवाच्यानि तान्याहुर्वैदिकादयः ।
अतः सर्वैकवाक्यत्वाद्धर्मशास्त्रमदोऽर्थकम् ॥ ८ ॥

अर्थात्—**भागवत** लोग, पांच व्रत और पांच उपव्रत, दूसरे शब्दों में कहें तो पांच यम और पांच नियम—इस तरहसे दशविध धर्मका प्रतिपादन करते हैं। **पाशुपत** लोगोंने, अहिंसा, सत्य, अचौर्य, दुर्ध्यान का अभाव, ब्रह्मचर्य, अक्रोध, सरलता, शौच संतोष और गुरुशुषा इन दश प्रकार के धर्मों का प्रतिपादन किया है। व्यास का अनुकरण करनेवाला **सांख्य** अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और व्यवहार, यह पांच यम तथा अक्रोध, गुरुशुश्रूषा, शौच, आहार में लाघव (अल्पाहार) और अप्रमाद ये पांच नियम इस तरह १० प्रकार के धर्म का प्रतिपादन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

किया है। बौद्ध दश प्रकार के कुशल धर्म कहते हैं। वे इस प्रकार हैंः हिंसा, चोरी, परदारगमन, पैशून्य, कठोर वचन, असत्यवाद, असंबद्धभाषण, परपीडाचिन्तन, परिग्रह और मिथ्याभिनिवेश—इन दश पाप कर्मों को मन, वचन और शरीर से त्याग करना चाहिये। इसी तरह वैदिक आदि संप्रदायवाले अहिंसा आदि धर्मों को 'ब्रह्म' आदि शब्दों से स्वीकार करते हैं। इस वास्ते धर्म की व्याख्या में सबका एकमत—समानता होने से अहिंसा आदि का प्रतिपादन करनेवाला धर्मशास्त्र अर्थसंगत है। अर्थात् सर्वमान्य है।

उपर्युक्त श्लोकों के अन्तिम वाक्य से सुस्पष्ट विदित होता है कि- अहिंसा आदि धर्म का आदर सभी को मान्य है। तथापि आश्चर्य का विषय है कि-

अहिंसा परमो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः।

इस वाक्य की चरितार्थता जैनसमाज के अतिरिक्त दूसरे किसी समाज में क्वचित् ही दृष्टिगोचर होती है। अस्तु। इस विषय पर अधिक विवेचन नहीं करते हुए आगे बढ़ने की चेष्टा करें।

इस तरहसे चारित्र धर्म का स्वीकृति शब्दान्तर से समस्त आस्तिक करते हैं। परन्तु वर्त्तमान समय में स्वेच्छा-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चारीपने के कारण, मोह, ममता, रागद्वेष, उपानह (जूते), छड़ी, खडाउ, रेलगाडी, इक्कागाडी, गद्दी, तकिये आदि वस्तुओं का उपयोग द्रव्यत्यागी मनुष्यों में भी दृष्टिगोचर होता है। प्रमादाधीन होने पर भी अहंकार के संयोग से साधुता के योग सिवाय साधुताकी स्थापना करते हैं। कुयुक्तियों के व्यापार द्वारा आत्मा को मलीन बनाते हैं। तो भी ऐसे कठिन समय में जैनमुनि निम्नोक्त वाक्य को ध्यान में रखकर यथाशक्ति उसपर आचरण करते हैं। " गृहस्थानां यद् भूषणं तत् साधूनां दूषणम् " अर्थात् गृहस्थों को जो वस्तु आभूषण रूप हैं वे साधुओं को दूषण रूप हैं। और साधुओं का जो भूषण है, वह गृहस्थों के लिये दूषण रूप है। जैसे—

कार्श्यं क्षुत्प्रभवं कदन्नमशनं शीतोष्णयोः पात्रता
पारुष्यं च शिरोरुहेषु शयनं मह्यास्तले केवलम्।
एतान्येव गृहे वहन्त्यवनतिं तान्युन्नतिं संयमे
दोषाश्चापि गुणा भवन्ति हि नृणां योग्यपदे योजिताः
॥ १ ॥

उचित स्थान में जोड़े हुवे दोष भी गुण रूप होते हैं। जैसे कि— क्षुधा से उत्पन्न हुई कृशता (दुबलापन) साधुओं को भूषणरूप है। किन्तु यही गृहस्थों को दूषण-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

रूप है। लोग कहेंगे कि– रुपया-पैसा होते हुए भी कृपणता से खाता नहीं है। परन्तु साधु को दुबला पतला देखकर लोग उसे महा तपस्वी कहेंगे। निरस भोजन करना, यह साधुओं के वास्ते त्याग का कारण माना जायगा, और गृहस्थों के लिए कृपणता कही जायगी। ठंड–धूप सहन करना, यह मुनियों के संबंध में सहन-शीलता के रूप में होगा। और गृहस्थों के पास गरम वस्त्र, बूट, छाता आदि न होने के कारण वह दरिद्री कहलायेगा। केशों को नहीं संवारना, यह साधु का भूषण है, लेकिन यह गृहस्थों के लिये दूषणरूप है। एवं भूमिपर शयन करना, यह साधु की निःस्पृहता का सूचक है, और गृहस्थ के लिये दूषण रूप है। इसी तरह से जो वस्तुएं गृहस्थों के लिये अवनति के कारणरूप होती हैं, वेही साधुओं को उन्नति के कारणरूप हैं। इस कारण से साधुओं को गृहस्थों के मार्ग से दूर रहना सर्वथा योग्य है।

उपर्युक्त वस्तुओं का पालन करनेवाले जैन संवेगी साधुओं के अतिरिक्त दूसरे कोई क्वचित् ही नजर आते हैं। जैनसाधु गाडी, इक्का आदि में कदापि बैठते नहीं हैं। इतना ही नहीं परन्तु रेल की भी सवारी नहीं करते। खुद के पास जो वस्त्र, काष्ठ किंवा तुंब के पात्र, एवं पढ़ने की

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पुस्तकें होती हैं, इनको अपने शरीर पर उठाकर पैदल ही पृथ्वी पर विचरते हुवे एक गांव से दूसरे गांव को जाते हैं। वर्षाऋतु में चार मास तक एकही स्थल में निवास करते हैं। आठ महीनों तक पर्यटण करते हैं। भिक्षा मांग कर आहार लेते हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त पर्यन्त कार्यवश स्वस्थान छोड़कर बाहर जाते हैं। और रात्रि में बाहर भी नहीं जाते हैं। द्रव्य का स्पर्श भी नहीं करते हैं। स्त्री, पशु और नपुंसक से रहित स्थान में निवास करते हैं। स्त्री के यत्किञ्चित् स्पर्श को भी प्रायश्चित्त का कारण समझते हैं। परोपकार करने के वास्ते सदा कटिबद्ध रहते हैं। अप्रिय वचनों का उच्चारण भी नहीं करते। ऐसे प्रसंग, जिनसे राग-द्वेष की उत्पत्ति होवे, उनका त्याग करते हैं। शत्रु और मित्र पर समभाव रखते हैं। शांतिपूर्वक उपदेश देते हैं। परनिंदा हो, ऐसे वचन बोलते नहीं हैं। जो वस्तुएं अपने पास रखते हैं, वे सब 'अहिंसा' की रक्षा के लिये ही रखते हैं। शरीर सुख अथवा मूर्च्छा के वास्ते नहीं रखते।

इस कलिकाल में भी पूर्वोक्त गुणों से विभूषित केवल जैनमुनि ही दृष्टिगोचर होते हैं। पूर्वोक्त गुणों से विपरीत आचरणवालों को शास्त्रकारोंने मुन्याभास (सिर्फ कहने के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि–दिखाव मात्र के मुनि) बताया है। वाचको, चारित्र-रत्न की व्याख्या के प्रसंग में तत्संबंधी कुछ विशेष लिखा गया है। तौ भी वह अप्रासंगिक तो नहीं है।

पूर्वोक्त ज्ञान और दर्शन के साथ चारित्र को जोड़ें तो त्रिपुटी का योग होता है। इस सम्यक्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र रूपी रत्नत्रय को किन किन मतानुयायी भी प्रकारान्तर से मानते हैं, इस का उल्लेख 'पुरुषार्थ दिग्दर्शन' * नामक पुस्तक में किया है, इस वास्ते जिज्ञासुओं को उस पुस्तक का अवलोकन करना चाहिये। इन तीन रत्नों के सिवाय आत्मोन्नति कदापि नहीं हो सकती है।

कतिपय भद्रिक जीव विश्वासु होकर तप, जप, ज्ञान, ध्यान, क्रियाकांड न करते हुए केवल ईश्वर की प्रार्थना मात्र से मोक्ष मानते हैं, परन्तु वह ठीक नहीं है। ईश्वरने स्वयं किस प्रकार के कष्ट सहन किये हैं, उस का विचार सूक्ष्म दृष्टि से करना उचित है। शायद यहाँ पर यह शंका उत्पन्न होगी कि "ईश्वर तो अनादि है, उस को दुःख

---

* यह पुस्तक भी श्रीयशोविजय जैनग्रंथमाळा–भावनगर ने प्रकाशित की है। –अनुवादक.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कैसे प्राप्त हुवे ?" इस का उत्तर यह है कि–ईश्वर को अनादि माननेवाले भी उस को अवतार तो मानते हैं। जब ईश्वर को अवतार लेना माना जाय, तो गर्भोत्पत्ति आदि कष्टों के जो कारण हैं, वे भी मानने ही होंगे। कदाचित् यह कहा जाय कि "ईश्वर को वैसा कष्ट नहीं होता है" तो यह कथन मात्र ही है। इस विषय में यहाँ विषयान्तर न करते हुवे, रत्नत्रय के सिवाय आत्मोन्नति नहीं होती है इस विषय में ही संक्षेप में प्रतिभान कराकर यह निबंध पूरा करूंगा।

श्रद्धा और चारित्ररहित ज्ञान कार्यसिद्ध नहीं कर सकता है। अमुक औषधि अमुक रोग को दूर करती है, केवल इतना ही जानने से रोग दूर नहीं होता है। परन्तु क्रियारूचि पूर्वक उस बात को अमल में लाना होगा। पुनश्च केवल चारित्र से भी कार्यसिद्धि नहीं होगी। ज्ञान न होने से क्रियारूप चारित्र विपरीत फल देता है। औषधि श्रेष्ठ होवे, परन्तु अनुपान का ज्ञान न हो तो वह औषधि उलटी नवीन व्याधि उत्पन्न करती है। एवं केवल श्रद्धा से भी कार्य की सिद्धि नहीं होती है। उद्यम और विचार-शीलता की भी आवश्यकता है। श्रद्धा मात्र से ही कार्य की सिद्धि होती होवे तो बीज किस प्रकार बोना? उत्पन्न

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होगा या नहीं ? इत्यादि संबन्ध में ज्ञानादि की दरकार ही नहीं रहती। इतने पर से ही समझ में आजावेगा कि प्रत्येक कार्य में इस त्रिपुटी की आवश्यकता है। इसके वास्ते तत्त्वार्थसूत्र की बृहद्वृत्ति में विशेष खुलासा दिया है। जिज्ञासुओं को चाहिए कि उस पुस्तक को देखें।

रत्नत्रय, यही समाधि, यही योग, यही ध्यान और यही आत्मशुद्धि का परम कारण है। यद्यपि हठयोग तात्कालिक गुणकर्ता प्रतीत होता है, किन्तु वास्तविक आत्मशुद्धिदायक नहीं है। मर्कट (बंदर) के समान मन को बलात्कार से बांधने से उस का लाभ केवल बंधन समयतक ही है। वहाँ से मुक्त होते ही फिर चंचलता में भ्रमण करने लगता है। इस वास्ते हठयोग में जैसा 'नाम वैसाही गुण है।' सहज समाधि ज्ञान, दर्शन चारित्रवान् पुरुषों के अतिरिक्त अन्य को प्राप्त नहीं होती है। इसलिये ज्ञान, दर्शन, चारित्र द्वारा ही आत्मोन्नति के लिये तत्पर रहना चाहिये।

अन्त में—विना कर्म के, जगत् विचित्र रचनावाला दिखाई नहीं देता है। जिस समय आत्मा कर्म-कीडड़ से मुक्त होता है, तब ही परमात्मा गिना जाता है। इस वास्ते परमात्मा की उच्च दशा प्राप्त करने के लिये हमेशा शुभ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विचारों की सुंदर पद्धति का स्वीकार करना चाहिये। स्वभ्रान्तर में भी जड़वादियों के जड़वाद में लुब्ध नहीं होना चाहिये। वीरप्रभु के यथार्थ वचनों पर श्रद्धा रखना, वैराग्य वासित अन्तःकरणयुक्त होकर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया लोभ, ईर्ष्या, अज्ञान, विषय और विकारादिक का जहाँ तक हो सके शीघ्र त्याग करना चाहिये। परोपकार को स्वोपकार मानना चाहिये। बस, यही आत्मोन्नति का सीधा और सरल मार्ग है। इस वास्ते उस मार्ग का अवलंबन करके जगत् के जीव, आत्मोन्नति की साधना करें, यही अन्तःकरण से इच्छा करके इस निबंध की पूर्णाहुति की जाती है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com